IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

उपनिषदों में प्राण

डॉ. हेमलता जोशी, सहायक आचार्य
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं, (राज.)

प्राण जीवन का आधार है, जीवन की शक्ति है, जीवन का पर्याय है और उसके अस्तित्व की पहचान है। इसी के द्वारा प्राणी जीवन व्यापार में संलग्न रहता है, क्रियाशील रहता है। प्राण जितना ही स्वस्थ होता है, शक्तिशाली होता है, नियंत्रित होता है, जीवन भी उसी के अनुरूप होता है। इतना ही नहीं, प्राण की साधना कर ही साधक अंतःनिहित शक्तियों से परिचित होता है, उन्हें जागृत करता है और उनका आध्यात्मिक उन्नयन में उपयोग करता है। प्राण की सिद्धि अनेक सिद्धियों का मूल है। अतः प्राण को सिद्ध करना, उसके वशीकरण में सिद्धहस्त होना और परम तत्त्व से परिचित होने तक की प्रक्रिया में प्राण साधना का महत्त्वपूर्ण योगदान है। विभिन्न यौगिक ग्रंथों में प्राण से संबंधित चर्चा की गई है। उपनिषद् इनमें एक हैं। उपनिषदों में प्राण को कई नामों से जाना गया है, कई उपमाओं से उपमित किया गया है। प्रस्तुत लेख में प्राण को स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

प्राण का स्वरूप

प्राण शब्द प्रा और ण दो ध्वनियों का संयोग है। प्राण का अर्थ है निरंतरता और ण का अर्थ है गतिशीलता।[1] इस प्रकार प्राण का अर्थ है निरंतर गतिशील रहना। स्पष्ट है कि जो शक्ति अथवा ऊर्जा निरंतर गतिशील रहती है, वह प्राण है। प्राण का कार्य क्रिया करना है। प्राण जैविक शक्ति है जो ब्रह्मांडीय होती है। अर्थात् यह सभी जगह विद्यमान है। अतः प्राणी के अस्तित्व के लिए प्राण तत्त्व आवश्यक हैं। प्राण का संबंध चेतना से भी है। वस्तुतः ये दोनों ही एक दूसरे पर निर्भर हैं और एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं। इन दोनों के सहयोग से ही प्राणी का जीवन व्यापार चलता है परंतु चेतना के उच्च स्तरों अथवा समाधि की उच्च अवस्था में दोनों एकरूप हो जाते हैं। इससे स्पष्ट है कि चेतना और प्राण कभी एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं, कभी एक दूसरे को प्रभावित करते हैं और एकरूप हो जाते हैं। चेतना को प्रत्यक्षतः जानना सरल नहीं हैं पर प्राण साधना के द्वारा उसे जानने, उसका साक्षात्कार करने, उसकी अतल गहराइयों का स्पर्श करने का आनंद प्राप्त करने का अनुभव मानव प्राणी द्वारा किया जा सकता है। इससे प्राण की महत्ता को समझा जा सकता है। विभिन्न उपनिषदों में प्राण के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। इनमें कुछ प्रमुख उपनिषदों में प्राण का स्वरूप निम्न प्रकार है–

छांदोग्योपनिषद् में प्राण

छांदोग्योपनिषद् में प्राण के विविध नाम तथा उसके पीछे निहित कारण को भी स्पष्ट किया गया है। प्राण के विविध नामों में आंगिरस, वृहस्पति, आयास्य स्वर आदि प्रमुख हैं। प्राण को आंगिरस कहा गया है क्योंकि वह वह संपूर्ण अंगों का रस अथवा आधार है। प्राण को वृहस्पति कहा गया है और वाक् को वहृती कहा गया है। उसके पति अथवा स्वामी होने से प्राण को वृहस्पति भी कहा या है। प्राण को आयास्य भी मानते हैं क्योंकि यह प्राण आयस्य अथवा मुख से निष्क्रमण करता है।[2] प्राण की तुलना सूर्य से भी गई है। अतः कहा गया है कि प्राण और सूर्य दोनों समान हैं। प्राण ऊष्ण है और सूर्य भी ऊष्ण है। प्राण को स्वर कहते हैं और सूर्य को भी स्वर एवं अस्तकाल में प्रत्यास्वर कहते हैं।[3] प्रलयकाल में सभी प्राणी प्राण में ही प्रवेश कर जाते हैं और उत्पत्ति के समय ये प्राण से ही उत्पन्न हो जाते हैं। यह प्राण ही स्तुत्य देव है।[4] अंतःहृदय में प्राण प्रतिष्ठित रहते हैं।[5] प्राण ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ है।[6] सभी प्राणियों का अन्न प्राण के लिए ही है। अतः प्राण अन् नाम से प्रसिद्ध है।[7] जल का स्थूल भाग मूत्र, मध्यम रक्त और सूक्ष्म भाग प्राण बनता है।[8] प्राण जल रूप है। मात्र जल के सेवन से उस प्राण का नाश नहीं होता है।[9] प्रलयकाल में सभी प्राणी प्राण में ही प्रवेश कर जाते हैं और उत्पत्ति के समय ये प्राण से ही उत्पन्न हो जाते हैं। यह प्राण ही स्तुत्य देव है।[10] प्राण श्वास के द्वारा जो वायु भीतर से बाहर

निकलती है वह प्राण है और बाहर की वायु जो भीतर जाती है वह अपान है। प्राण और अपान का संधि ही व्यान है। व्यान ही वाणी है। इसलिए जब मनुष्य बोलता है तो वह प्राण और अपान की क्रिया नहीं करता है।[11]

वृहदारण्यकोपनिषद् में प्राण

इस उपनिषद् में कहा गया है कि आदित्य और अग्नि के संयोग से प्राण तत्त्व का उद्भव हुआ। प्राण को ही इंद्र और शत्रुहीन कहा गया है।[12] इस आत्मा से सभी प्राण, सभी लोक, सभी देवता और समस्त भूत उत्पन्न होते हैं। इसका उपनिषदीय नाम सत्य का सत्य है। अतः प्राण ही सत्य है और यह आत्मा उस प्राण का सत्य है।[13]

प्राणो वै रं प्राणे ही मानि सर्वाणि भूतानि रमंते सर्वाणि ह वा अस्मिनभूतानि विशन्ति सर्वाणि रमन्ते य एवं वेद। प्राण रम् है क्योंकि इसी में समस्त भूत रमण करते हैं।[14] बृह उक्थं प्राणे वा उक्थं प्राणो हीदं.... प्राण की उक्थ अर्थात् स्रोत है। यजुः प्राणौ वै यजुः प्राणे हीमानिसर्वाणि भूतानि युज्यंते....प्राण यजु है क्योंकि इसमें भूतों का योग होता है। सामप्राणौ वै साम प्राणे हीमानि सर्वाणि भूतानि सम्यंचि.....प्राण ही साम है क्योंकि सभी प्राणी में समाहित है।। क्षत्रं प्राणे वै क्षत्रं हि वै क्षत्रं त्रायते हैनं प्राणः....यह क्षत्र अर्थात् बल है क्योंकि यही शस्त्रादि से शरीर की रक्षा करता है।[15]

प्राण अयास्य और अंगिरस है।[16] इसके अतिरिक्त यह भी कहा है कि प्राण ब्रह्मणस्पति है। वाणी ही ब्रह्म है और प्राण वाणी का स्वामी है। इसलिए यह ब्रह्मणस्पति है। यह प्राण साम है। वाक् सा है और अम् प्राण है। सा और अम के संयोग से साम बना है। साम का सामत्व भी यही हैं क्योंकि यह प्राण मक्खी, मच्छर हाथी जैसा है और तीनों लोकों के तुल्य है। इसी कारण यह साम है।[17] जो कुछ भी अविज्ञात है वह प्राण स्वरूप है क्योंकि वह अविज्ञात रहकर भी शरीर का संरक्षण करता है।[18] प्राण का स्वरूप चंद्रमा ज्योतिष्मान स्वरूप है।[19] प्राण द्यु अर्थात् स्वर्ग लोक है। प्राण सामवेद है, प्राण मनुष्य है। प्राण प्रजा, संतति रूप है।[20] शरीर स्थित पंचप्राण यथा प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान हैं। आत्मा की निर्भरता उन्हीं प्राण पर निर्भर है।[21] यह प्राण रूपी देवता दूर नाम से युक्त हैं क्योंकि मृत्यु इनसे दूर ही रहती है।[22] इससे ज्ञात होता है कि प्राण ही सबकुछ प्राण ही है। यहां तक कि प्राण प्राण और आत्मा एक दूसरे पर निर्भर हैं।

तैत्तिरीय उपनिषद् में प्राण

इस उपनिषद् में प्राण को अनेक नामों से जाना गया है और अंततः प्राण को जीवन बताया गया है। कहा गया है कि प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्। प्राण ही ब्रह्म है।[23] प्राणो वा अन्नम्। प्राण ही अन्न है।[24] देवगण मनुष्य और पशु आदि प्राणी हैं, वे प्राण के आश्रय से ही चेष्टा करते हैं क्योंकि प्राण ही समस्त प्राणियों की आयु है। अतः यह सभी प्राणियों का जीवन है।[25] इससे स्पष्ट होता है कि तैत्तिरीय उपनिषद् प्राण को एक ओर ब्रह्म कहा गया है तो दूसरी ओर अन्न कहा गया है। जीवन जीने के लिए दोनों ही आवश्यक हैं। अतः ब्रह्मरूप भी वही है और अन्न के रूप में भी वही है। जिस प्रकार प्राण जीवन की रक्षा करता है, उसी प्रकार अन्न से प्राण प्रभावित होता है। अन्नमय कोश के लिए अन्न आवश्यक है। दूसरी ओर प्राण को स्वस्थ, सुदृढ़ बनाने में भी अन्न अर्थात् भोजन की आवश्यकता होती है। इसलिए दोनों का ही अपना–अपना मूल्य है। इस दृष्टि से प्राण ब्रह्मरूप भी है और अन्न रूप भी है।

प्रश्नोपनिषद् में प्राण

इस उपनिषद् में प्राण की उत्पत्ति उसके विविध रूप, प्रकार आदि का वर्णन किया गया है। इस संदर्भ में कहा गया है कि पुरुष ने सर्वप्रथम प्राण का सृजन किया। तदुपरांत प्राण से श्रद्धा, आकाश, वायु, ज्योति, जल, पृथ्वी, इंद्रियां, मन और अन्न का सृजन किया। अन्न से वीर्य तप, मंत्र, कर्म, लोक, नाम आदि सोलह कलाओं की रचना हुई।[26] दूसरी ओर कहा है कि प्राण की उत्पत्ति आत्मा से होती है। जिस प्रकार छाया देहधारी की देह से उत्पन्न होती है अथवा छाया देह के आश्रित है उसी प्रकार प्राण आत्मा से उत्पन्न होकर उसी में आश्रित रहता है। यह प्राण मन के संकल्प के द्वारा शरीर में प्रवष्टि करता है। इससे स्पष्ट होता है पुरुष द्वारा प्राण की और आत्मा शब्द एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। अर्थात् ये दोनों ही पर्यायवाची हैं।[27] यह प्राण ही अग्नि होकर तपता है। यही सूर्य इंद्र, मे मेघ, वायु, पृथ्वी एवं रयि है। सत्, असत् और अमृत भी यह प्राण ही है।[28] जिस प्रकार रथ चक्र की नाभि में अरे लगे रहते हैं, उसी प्रकार प्राण में ऋग्वेद की ऋचाएं, यजुर्वेद और सामवेद के मंत्र, ब्राह्मण, क्षत्रिय और यज्ञ सभी सन्निहित हैं।[29] इससे स्पष्ट होता है कि अनेक विशेषताओं को स्वंय में समेटे हुए है।

प्राण को संबोधित कर उसके विधि रूप तथा उनकी विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि हे! प्राण आप ही प्रजापति हैं। गर्भ में आप ही निवास करते हैं और आप ही माता–पिता के समान आकृति वाले होकर जन्म लेते हैं। हे प्राण! यह प्रजा आप को ही बलि प्रदान करती है क्योंकि आप ही संपूर्ण इंद्रियों में सहित प्रतिष्ठित हैं। आप ही देवताओं के लिए अग्नि हैं। पितरगणों के लिए स्वधा हैं। आप ही इंद्र हैं। अपने तेज के फलस्वरूप रुद्र हैं और सब ओर से हमारी सुरक्षा करने वाले हैं। आप ही ज्योतियों के स्वामी सूर्य हैं। आप ही

अंतरिक्ष में विचरण करते हैं। हे! प्राण आप मेघ रूप होकर वर्षण करते हैं। तब यह समस्त प्रजा प्रभूत अन्न उत्पादन की आशा से आह्लादित हो जाती है। हे! प्राण आप व्रात्य संस्कार विहीन होकर भी एकर्षि नामक अग्नि हैं। हम आपके निमित्त जो आहार प्रदान करते हैं, आप उसके भोक्ता हैं। आप इस जगत के स्वामी हैं, आप हमारे पिता हैं तथा आप ही वायु रूप होकर आकाश में विचरण करने वाले मातरिश्वा हैं। हे! प्राण आप हमारी वैसी ही रक्षा करें जैसे माता पुत्र की रक्षा करती है। आप हमें श्री और प्रज्ञा प्रदान करें।[30] इससे ज्ञात होता है वास्तव में प्राण ही विधि रूपों में हमारे लिए उपयोगी होता है।

प्राण व्यवस्थापक के रूप में भी कार्य करता है। अर्थात् वह अन्य उपप्राणों को उनकी प्रकृति के अनुरूप कार्य विभाजित करता है जिससे जीवन रूपी व्यापार समुचित ढंए से चलता रहे। अतः कहा है कि जिस प्रकार राजा अपने विभिन्न अधिकारियों को पृथक्–पृथक् ग्रामों में नियुक्त करता है उसी प्रकार प्राण अन्य प्राणों को भी पृथक्–पृथक् नियुक्त करता है।[31] जैसे प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान। पुनः इनके उपप्राणयथा नाग, कर्म, कृकल, देवदत्त और धननंजय। सब एक ही प्राण से जुड़े हैं पर कार्य की दृष्टि से सब भिन्न–भिन्न हैं। अंततः कहा है कि जो मनुष्य प्राण तत्त्व की उत्पत्ति, आगमन, स्थान व्यापकत्व बाह्य और आंतरिक स्थिति से प्रांचों भेदों को जान लेता है वह अमरत्व को प्रापत करता है।[32] इससे स्पष्ट होता है कि प्राण को जानना, उसकी साधना करना एक साधक के लिए आवश्यक है तभी वह अपने स्वरूप तथा परम सत्ता को जानकर पूर्णता प्राप्त कर सकता है।

जाबालोपनिषद् में प्राण

इस उपनिषद् में प्राण की उत्पत्ति तथा उसके विभिन्न प्रकारों का वर्णन मिलता है। इस संदर्भ में कहा गया है कि वह परमात्मा दो प्रकार की आत्माओं, स्वरूपों को ग्रहण करता है प्राण और सूर्य। प्राण और सूर्य ही सर्वप्रथम उत्पन्न हुए। यह सूर्य बाह्य आत्मा तथा प्राण अंतः आत्मा है। इसकी गति देखकर यह अनुमान लगाया जाता है कि यह अंतरात्मा ही है। प्राण का स्वरूप स्पष्ट रूप से हमारे समक्ष दृष्टिगत नहीं है। अर्थात् इसे देखा नहीं जा सकता है पर इसकी उपस्थिति का ज्ञान किया जा सकता है। अतः यह अंतःआत्मा है। प्राण के रूपों का वर्णन करते हुए हुए कहा है कि प्राण, अपान, व्यान, समान उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय ये दस प्राणवायु हैं। ये प्राण समस्त नस, नाड़ियों में संचरित होते हैं। इन दस प्राणों में आदि पांच प्राण ही प्रमुख हैं। इन पांचों में प्राण और अपान का ही सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया गया है।[33] इसका कारण है कि ये प्राण और अपान, इन दो प्राणों के एकीकरण की बात योग साधना में महत्त्वपूर्ण बताई गई है।

शरीर में स्थित पंच प्राणों की स्थिति का वर्णन करते हुए कहा है कि प्राण नामक वायु नासिका एवं मुख के बीच में, नाभि के मध्य भाग में और हृदय में हमेशा निवास करता है। अपान वायु गुदा, लिंग, जांघों, घुटनों, समस्त उदर, कटि नाभि तथा पिंडलियों में भी सदा स्थित रहता है। व्यान वायु दोनों कानों, चक्षुओं, दोनों कंधों, टखनों, प्राण के स्थानों और कंठ में भी व्याप्त रहता है। उदान वायु की स्थिति दोनों हाथों एवं पैरों में समझनी चाहिए। समान वायु निःसंदेह समस्त शरीर में फैलकर रहता है।[34] इसी प्रकार पंच उपप्राणों की स्थिति का वर्णन कर कहा गया है कि नाग आदि पांचों वायु त्वचा एवं अस्थि में निवास करते हैं। श्वास–प्रश्वास तथा खांसना ये तीन कार्य प्राण वायु के द्वारा संपन्न होते हैं। मलमूत्रादि का परित्याग अपान वायु के द्वारा होता है। समान वायु शरीर को सम अवस्था में बनाए रखता है। उदान वायु ऊर्ध्व की ओर प्रस्थान करता है। व्यान वायु ध्वनि का रूंजक है। डकार, वमन आदि कार्य नाग वायु के द्वारा पूर्ण होता है। इस देह में सौंदर्य आदि का संपादन धनंजय वायु के कार्य कहा जाता है। आंखों का खोलना, मूंदना आदि कूर्म नामक वायु की प्रेरणा से संपन्न होता है। कृकल के द्वारा भूख–प्यास की इच्छा तथा देवदत्त से तंद्रा–आलस्य होती है।[35] अतः इस उपनिषद् में प्राण के विविध प्रकार तथा उसके कार्यों को स्पष्ट किया गया है।

योगकुंडल्योपनिषद् में प्राण

इस उपनिषद् में प्राण तथा उसे स्थिर करने के उपाय बताए गए हैं। कहा है कि शरीर में संचरण करने वाली वायु को प्राण कहते हैं। उसे जब स्थिर किया जाता है तो उसे कुंभक कहा जाता है। योगकुड कुभंक दो प्रकार है सहित और केवल। सहित कुंभक का अभ्यास तब तक करते रहना चाहिए जब तक कुंभक की सिद्धि न हो जाए। सूर्य भेदन, उज्जाई, शीतली, भस्त्रिका ये चार कुंभक के भेद सहित कुंभक कहलाते हैं।[36] इन कुभकों के दौरान त्रिबंध का उपयोग करना चाहिए।[37] प्रथम दिन 10 बार, दूसरे दिन 15 बार औश्र तीसरे 20 बार अभ्यास। इस प्रकार पांच–पांच संख्या में बढ़ाता चले।[38] प्राण को ऊर्ध्वगामी बनाने के लिए मूल बंध का उपयोग करना जिससे अपान ऊर्ध्वगामी होकर अग्नि के साथ संकुचित होकर सुषुम्ना के मुख में प्रवेश कर जाती है। प्राण के स्थान में जब वह अग्नि पहुंचती है तब प्राण और अपान दोनों मिलकर कुंडलिनी में मिलते हैं। उस समय उसकी गर्मी से तप्त होकर एवं वायु के बारंबार दबाव से कुंडलिनी सीधी होकर सुषुम्ना के मुंह में प्रवेश कर जाती है।[39] बिंदु, सत्व एवं प्रकृति का विस्तार प्राणवायु है।[40] षट्चक्रों का ज्ञान कर प्राण को आकर्षित कर मुखमंडल तथा परमानंददायी सहस्रार चक्र में प्रवेश कर ऊर्ध्वगामी दिशा में नियोजित करने से प्राण ब्रह्मांड में स्थित हो जाता है।[41]

योगचूडामण्योपनिषद् में प्राण

योगचूड़ामणि उपनिषद् में कहा है कि यह प्राण हंस है। जो श्वास के माध्यम से 26 अंगुल बाहर आता है।[42] इस उपनिषद् के अनुसार प्राण का स्थान स्वाधिष्ठान में कहा गया है। प्राण को ही स्व कहते हैं। उसे मेढ्र भी कहते हैं।[43] प्राण अपान को खींचता है और अपान प्राण को खींचता है। इसलिए जीव प्राण की इस क्रिया के द्वारा निरंतर ऊपर–नीचे आता–जाता रहता है। प्राण और अपान की इस अधः और ऊर्ध्वगमन की क्रिया को जानने वाला ही योगवेत्ता है।[44] प्राण निरोध हेतु प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।[45] संसार सागर से मुक्ति के लिए यह प्राणायाम महासेतु के सुदृश है आर पाप रूपी ईंधन को जलाने वाली अग्नि के तरह है।[46] इससे स्पष्ट है कि प्राण को वश में करने अथवा उसमें नियंत्रण स्थापित करने, उसे स्थिर करने हेतु प्राणायाम आवश्यक है। इससे मन भी स्थिर हो सकेगा साथ ही ध्यान की उच्च अवस्थाओं को प्राप्त किया जा सकता है।

अन्य उपनिषदां में प्राण

प्राण को अनेक उपनिषदों में स्थान दिया गया है। ब्रह्मोपनिषद् में कहा है कि प्राण हृदय में निवास करता है और हृदय में प्राण प्रतिष्ठित है।[47] अतः हृदय और प्राण एक दूसरे से अभिन्न हैं। उपनिषदों में हृदय को ही ब्रह्म अथवा ब्रह्म का स्थान बताया गया है। इस दृष्टि से प्राण की उत्पत्ति भी उसी ब्रह्म अथवा आत्मा से मानी गई है। इसलिए दोनों ही अभिन्न हैं। ध्यानबिंदूपनिषद् में कहा गया है कि हजारों नाड़ियों में प्राण जीवरूप से वास करते हैं। प्राण और अपान के वशीभूत होकर जीव ऊपर–नीचे आवागमन करता रहता है। प्राण कभी दांए तो कभी बांए मार्ग से गमन करता है परंतु चंचल प्रकृति का होने के कारण देखने में नहीं आता।[48] इससे स्पष्ट है कि प्राण चचंल होने के कारण एक स्थान पर स्थिर न रहकर गतिशील रहता है। त्रिशिखिब्राह्मोपनिषद् में कहा गया है कि जीवन प्राण तत्त्व में आरूढ़ होकर ही विचरण करता है। उसके बिना वह विचरण नहीं कर सकता है।[49] शरीर से प्राण 12 अंगुल अधिक प्रमाण वाला है।[49] त्रिशिखि अर्थात् शरीर की माप अपनी अंगुलियों से 96 अंगुल है तो प्राण उससे अधिक है। मन को स्थिर करने हेतु प्राण की साधना अनिवार्य है।[51] इससे स्पष्ट होता है कि प्राण को साधने से मन सधता है। मन के सधने से समाधि की अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है। मुंडकोपनिषद् में कहा गया है कि जो संपूर्ण भूतों के रूप में प्रतिभासित हो रहा है, वह प्राण ही है। यह आत्मा में रमण और क्रीड़ा करने वाला क्रियावान पुरुष ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठतम है।[52] अर्थात् यह प्राण का प्राण परमात्मा है। वही प्राणियों में विभिन्न प्रकार से प्रकाशित हो रहा है। सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात्–उस प्राण से सात प्राण अर्थात् मस्तकस्थ सात इंद्रियां यथा दो आंखें, दो कान तथा जिह्वा उत्पन्न हुए हैं।[53] इससे स्पष्ट होता है प्राण मुंडकोपनिषद् में प्राण परमात्मा का ही पर्याय है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि उपनिषदों में प्राण की विशद चर्चा की गई है। इसमें संक्षिप्ततः ही कुछ महत्त्वपूर्ण अंशों को ही प्रस्तुत लेख में स्थान दिया गया है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्राण जीवनी शक्ति है। प्राण के आधार पर ही जीवन का अस्तित्व है। अतः इस प्राण को जितना ही अधिक समझा जा सकेगा, इसे साधा जा सकेगा, इसको वश में किया जा सकेगा और इसका विस्तार यानि सुदृढ़ किया जा सकेगा, यह उतना ही अधिक फलदायी होगा। कहने का तात्पर्य है कि प्राण शक्ति को बढ़ाने से जीवन की अनेक अनेक समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। रोगों से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। मानसिक एकाग्रता, मनोबल, आत्मविश्वास, रोगप्रतिरोधकता आदि को विकसित करने में प्राणायाम सक्षम है। इसके साथ ही आध्यात्मिक विकास में यह महत्त्वपूर्ण है। योगी इसी को साधकर मन का वशीकरण करते हैं। इससे स्पष्ट है कि साधना की उच्च अवस्थाओं को प्रापत करने में प्राण साधना आवश्यक है। प्राण साधना का संबंध प्राणायाम से है। अतः प्राणायाम की साधना जितनी बलवती होगी, प्राण भी उतना ही बलवान बन सकेगा।

संदर्भ स्थल

1. प्राण, प्राणायाम, प्राणविद्या, पृ. 9
2. छांदोग्योपनिषद्, 1/2/12
3. छांदोग्योपनिषद्, 1/3/2
4. छांदोग्योपनिषद्, 1/11/5
5. छांदोग्योपनिषद्, 1/12/4
6. छांदोग्योपनिषद्, 5/1/1
7. छांदोग्योपनिषद्, 5/2/1
8. छांदोग्योपनिषद्, 6/5/2
9. छांदोग्योपनिषद्, 6/7/1
10. छांदोग्योपनिषद्, 1/11/5
11. छांदोग्योपनिषद्, 1/3/3
12. वृहदारण्यकोपनिषद्, 1/5/12

13. वृहदारण्यकोपनिषद्, 2/5/20
14. वृहदारण्यकोपनिषद्, 5/13/12
15. वृहदारण्यकोपनिषद्, 5/3/1–4
16. वृहदारण्यकोपनिषद्, 1/3/18
17. वृहदारण्यकोपनिषद्, 1/3/21–22
18. वृहदारण्यकोपनिषद्,1/5/10
19. वृहदारण्यकोपनिषद्,1/5/13
20. वृहदारण्यकोपनिषद्, 1/5/5–7
21. वृहदारण्यकोपनिषद्, 1/5/3
22. वृहदारण्यकोपनिषद्, 1/3/9
23. तैत्तिरीयोपनिषद्, भृगुवल्ली 3/1
24. तैत्तिरीयोपनिषद्, भृगुवल्ली 7/1
25. तैत्तिरीयोपनिषद्, ब्रह्मांनदवल्ली, 3/1
26. प्रश्नोपनिषद्, 6/4
27. प्रश्नोपनिषद्, 3/3
28. प्रश्नोपनिषद्, 2/5
29. प्रश्नोपनिषद्, 2/6
30. प्रश्नोपनिषद्, 2/7–12
31. प्रश्नोपनिषद्, 3/4
32. प्रश्नोपनिषद्, 3/12
33. जाबालदर्शनोपनिषद्, 4/23–25
34. जाबालदर्शनोपनिषद्, 4/26–29
35. जाबालदर्शनोपनिषद्, 4/30–34
36. योगकुंडल्योपनिषद्, 1/19–21
37. योगकुंडल्योपनिषद्, 1/40
38. योगकुंडल्योपनिषद्, 1/54–55
39. योगकुंडल्योपनिषद्, 1/46–66
40. योगकुंडल्योपनिषद्, 3/8
41. योगकुंडल्योपनिषद्, 3/12–13
42. योगचूड़ामण्योपनिषद्, 93
43. योगचूड़ामण्योपनिषद्, 11–12
44. योगचूड़ामण्योपनिषद्, 30
45. योगचूड़ामण्योपनिषद्, 92
46. योगचूड़ामण्योपनिषद्, 96
47. ब्रह्मोपनिषद्, 4
48. ब्रह्मोपनिषद्, 58–59
49. त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, 6
50. त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, मंत्र 54
51. त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, मंत्र, 114
52. मुंडकोपनिषद्, 3/1/4
53. मुंडकोपनिषद्, 1/2/8

संदर्भ ग्रंथ

1. प्राण, प्राणविद्या, प्राणायाम, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, 2001
2. 108 उपनिषद्, भाग 1–3, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट गायत्री तपोभूमि, मथुरा (उ. प्र.)
3. मुंडकोपनिषद्, गीता प्रेस गोरखपुर।
4. उपनिषद् अंक, गीता प्रेस गोरखपुर।